प्रथम अध्याय

"नागार्जुन का व्यक्तित्व और कृतित्व"

प्रथम अध्याय

''नागार्जुन का व्यक्तित्व और कृतित्व''

व्यक्तित्व -

जन्म, बचपन, परिवार, शिक्षा,
नौकरी, विवाह, संतान

बाह्य व्यक्तित्व

आंतरिक व्यक्तित्व

निष्कर्ष

कृतित्व -

उपन्यास, काव्य, कहानी,
निबंध, यात्रा प्रसंग, संस्मरण,
साक्षात्कार, भाषण, चिट्ठी पत्री,
पुरस्कार

निष्कर्ष

संदर्भ सूची

प्रथम अध्याय

"नागार्जुन का व्यक्तित्व और कृतित्व"

प्रस्तावना :-

नागार्जुन हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार है। उन्होंने हिंदी साहित्य में मुख्यत: दो विधाओं - कविता और उपन्यास पर अपनी लेखनी चलाई है। इन दोनों में उनका उपन्यासकार का रुप अधिक महत्व का है। वे हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में आंचलिकता के जनक एवं समाजवादी यथार्थववाद के प्रबल समर्थक है।

आधी शताब्दी से अधिक समय से सृजनरत नागार्जुन का रचनाकार व्यक्तित्व विविधतापूर्ण और बहुआयामी है। अपनी रचना यात्रा में नागार्जुन ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक मोर्चों पर जो प्रेरणाएँ अर्जित की, वे उनकी रचना कि आधार भी बनती गयी। नागार्जुन जिन स्त्रोतों से प्रेरणा ग्रहण करते है वह न केवल रचना के लिए बल्कि उनके व्यक्तिमत्व निर्माण के लिए भी प्रेरक सिद्ध हुआी। इसलिए नागार्जुन के प्रेरक स्त्रोतों की भी नियोजित परंपरा है। वे किसी को भी अपना प्रेरक मानने की भूल नहीं करते न ही वे इसके लिए संकिर्ण मानदंडों को स्वीकार करते है। नागार्जुन के प्रेरणा स्त्रोत प्राचीन और समकालीन दोनों रुपों मे उपलब्ध हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य यदि उनको प्रेरित करता है, तो समकालीन इतिहास की विविध घटनाएँ और आंदोलन उसे रचना की प्रेरणा देते है।

नागार्जुन के रचना संसार में उपन्यासों के अध्ययन से स्पष्ट है कि वे अपने युग के प्रति अत्याधिक जागरुक है। उन्होंने युग की प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्या को गहराई से अनुभव कर रचनाओं में रुपायित किया है। उन्होंने वर्ग-संघर्ष का चित्रण कर पूँजीपतियों एवं उच्च वर्ग के प्रति निम्न वर्ग के विद्रोह को जगाया है। अत्याचार, उत्पिडन, और शोषण आदि के यथार्थ चित्र उनके उपन्यासों में प्रखर है। वे वर्तमान शासन व्यवस्था से संतुष्ट नहीं है। उन्हें राजनीतिक नेताओं

से घृणा है। स्त्री समाज से उनकी गहरी सहानुभूति है। वे नारी को जीवन के हर क्षेत्र में आगे लाना चाहते है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक अंधविश्वासों का खंडन किया है। उन्होंने राजनीतिक, राष्ट्रीय, कृषक तथा मजदूर आंदोलनों का विशद चित्रण किया है। उन्होंने कृषक एवं समाज के निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति एवं कारणों पर प्रकाश डाला है।

नागार्जुन रुस की समाजवादी आर्थिक विचारधारा से अत्याधिक प्रभावित है। वे देश की युवा शक्ति से पूर्णत: आश्वस्त है। उनके उपन्यासों के पात्र कर्म को ही सबसे बड़ा धर्म मानते है। वे मुंशी प्रेमचंद के पात्रों की तरह परिस्थितियों के आगे घुटने नहीं टेकते। इसके विपरित वे क्रांतिचेता है, और परिस्थितियों से जूझने, संघर्ष करने के लिए सदैव तत्पर है।

नागार्जुन की साहित्यिक कृतियों पर डॉ.प्रकाशचंद्र भट्ट और डॉ.ज्ञानेशदत्त हरित दोनों ने शोध-प्रबंध लिखे है। इन ग्रंथो में नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित समाज के विभिन्न पक्षों और उनकी विचारधारा का जो रुप उद्‌घाटित हुआ है वह व्यवस्थित एवं वैविध्यपूर्ण है तथा उन्हें एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक चिंतक प्रमाणित करता है।

1) नागार्जुन का व्यक्तित्व :-

भारतीय साहित्यकारों ने 'स्व' की अपेक्षा 'पर' को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। वे अपने प्रति उदासिन रहकर संसार से विमुक्त हो साहित्य सेवा में लीन रहे है। उसी परंपरा का अनुसरण नागार्जुन ने भी किया है। हिंदी साहित्य में 'नागार्जुन', मैथिली में 'यात्री', लेखकों, मित्रो तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं में 'नागाबाबा', संस्कृत में 'चाणक्य' जैसे सम्मान-सूचक नाम से पुकारे जानेवाले इस साहित्यकार का वास्तविक नाम वैद्‌यनाथ मिश्र है। स्वभाव से विद्रोही और परंपरायंजन्य बाबा का घरेलु नाम 'ढक्कन मिसिर' था।

अ) जन्म :-

नागार्जुन की जन्मतिथि के बारे में विद्‌वानों के अनेक मत है। डॉ. जयकांत मिश्र ने 'ए हिस्ट्री और मैथिली लिट्‌रेचर में उनका जन्म सन 1908 माना है।'[1]

'हिंदी साहित्य कोश' में उनका जन्म सन् 1910 दिया गया है।''[2] डॉ. प्रकाशचंद्र भट्ट ने उनका जन्म 1911, 30 जुन मास की किसी तिथि (ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा) को माना हैं।[3] डॉ. ज्ञानेशदत्त हरित ने भी अपने प्रकाशित शोध-प्रबंध 'नागार्जुन - व्यक्तित्व और कृतित्व' में सन 1911 को ही जन्म का वर्ष माना है। प्रा. अर्जुन जानू घरात ने नागार्जुन का जन्म 1911 में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को माना है। इसी तरह नागार्जुन की जन्मतिथि का कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। उनके जन्मतिथि में यदि कोई प्रमाण है तो उनकी नानी, जिनके अनुसार जेठ के महिने में किसी दिन नागार्जुन का जन्म हुआ था। नागार्जुन ने स्वयं भी सन 1911 में ही अपना जन्म स्वीकार किया है। उनका जन्म मध्यमवर्ग मैथिल ब्राह्मण परिवार में सतलखा ग्राम में हुआ ।

❊ बचपन :

नागार्जुन के बचपन में ही माँ का देहावसान हो गया था। पिताजी संसारिक ममत्व से विमुक्त स्वभाव के हो गये थे। कहा जाता है उनके पिता ने वैद्यनाथ धाम में एक माह रहकर अनुष्ठान किया था, जिसके फलस्वरुप नागार्जुन का जन्म हुआ। परिणामत: इस नव शिशु को दीर्घजीवी देखने की कामना से 'वैद्यनाथ धाम' पर ही माँ-बाप ने बच्चे का नाम वैद्यनाथ मिश्र रखा। प्यार में उन्हें 'ठक्कन' कहकर पुकारते थे। उनका बचपन 'महिषी' गाँव में बीता। नागार्जुन नाम का वरण उन्होंने जब किया तब वे 1936 में श्रीलंका के विद्यालंकर परिवेश में पालि और बौद्ध दर्शन के आचार्य एवं प्रशिक्षक के रुप में गए।

❊ परिवार :-

नागार्जुन के पिता का नाम गोकुल मिश्र तथा माता का नाम उमादेवी था। नागार्जुन के जन्म के पूर्व चार भाई, बहनों का शैशवकाल में ही देहांत हो चुका था। नागार्जुन के पिता गोकुल मिश्र घुम्मकड, भंगेडी, लापरवाह, रुढीवादी, दरिद्र संस्कार हीन, कठोर और फक्कड तबीअत के व्यक्ति थे। उनकी माता उमादेवी सरल हृदय, ईमानदार, परिश्रमी, एवं दृढचरिद्र महिला थी। माँ के प्रति पिता का कठोर व्यवहार से नागार्जुन ने आगे चलकर पारिवारिक निस्संगता का रुप ले लिया। तेरह वर्ष की आयु के बाद नागार्जुन घर के प्रति बिलकुल उदास हो गये।

✲ शिक्षा :-

नागार्जुन की आरंभिक शिक्षा गाँव की संस्कृत पाठशाला में हुई। कम पढे-लिखे एवं दरिद्र होने के कारण उनके पिता उन्हें कभी निम्न जाति के लोगों के साथ हँसके बोलने से मना नहीं करते थे। इसीलिए उनका बचपन निम्न वर्ग के लोगों के साथ बिता है। बालक नागार्जुन के हृदय में इसी कारण गरीबों के प्रति करुणा उत्पन्न हो गयी। इसका प्रतिफलन यह हुआ कि उनके उपन्यासों में निम्नवर्ग और गरिब जनता का चित्रण मिलता है। उन्होंने अपने बचपन में जो विपत्तियाँ झेली, भेदभाव देखा, किसानों की दुर्दशा देखी इन सबका चित्रण उपन्यासों में मिलता है।

तेरह वर्ष की आयु में उन्होंने संस्कृत की प्रथम परिक्षा पास करली। यह परिक्षा उत्तीर्ण कर लेने के बाद वे अपने गाँव में ही रहने लगे थे। पंडित मिश्र ने बालक नागार्जुन को संस्कृत के कुछ छंदों की व्यवहारिक शिक्षा दी। अपने गाँव में संस्कृत की शिक्षा समाप्त करने के बाद किशोर नागार्जुन की बाद की शिक्षा काशी और कलकत्ता में हुई। संस्कृत में उन्होंने 'साहित्याचार्य' की उपाधि प्राप्त की। युवा नागार्जुन पालि भाषा तथा बौद्ध-दर्शन के अध्ययन के लिए केलानिया (कोलंबो) में ही रहे। उन्होंने कलकत्ता में संस्कृत कॉलेज में पंद्रह रुपये की छात्रवृत्ति की और छात्रावास में मुक्त आवास में अध्ययन भी किया था।

✲ नौकरी :-

नागार्जुन ने काव्य तीर्थ की उपाधि का अध्ययन पूरा किये बिना ही वे सन 1934 में सहारनपुर में सौं रुपये मासिक वेतन पर प्राकृत से हिंदी में अनुवाद किया करते थे। परंतु एक वर्ष काम करने के बाद यह पद उन्होंने छोड दिया। जीविकोपार्जन की भूमिका में उन्होंने पंजाब में एक पत्रिका 'दीपक' का संपादन तथा श्रीलंका में अध्यापन किया। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के संपादकीय विभाग में भी संबद्ध रहे।

⁕ विवाह :-

नागार्जुन का विवाह उन्नीस वर्ष की आयु में अपराजिता देवी से हुआ। नागार्जुन अपनी पत्नी को प्यार में 'अपू' कहकर संबोधित करते थे। उनके हृदय में अपनी पत्नी के प्रति सदैव सहानुभूति के भाव रहे है लेकिन अपनी यायावरी वृत्ति के कारण उन्हें यथोचित स्नेह नहीं दे पाये है, जो कि एक सद्गृहस्थ से अपेक्षित है।

⁕ संतान :-

नागार्जुन को चार पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। पुत्र शोभाकांत, सुकांत, श्रीकांत और श्यामकांत और पुत्रियाँ उर्मिला और मंजु है। अब तक उनके पुत्र और पुत्रियों का विवाह हो चुका है। उपेक्षा वृत्ति एवं धनाभाव के कारण उनकी संतानें उच्चशिक्षा से वंचित रह गयी है।

⁕ बाह्यव्यक्तित्व :-

नागार्जुन के बाह्य व्यक्तित्व में कुछ भी ऐसा नहीं है जो कि उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके। उनका साधारण मझोला कद तथा वर्ण श्याम है। शरीर से वे प्राय: अस्वस्थ रहते है। वे मोटे खद्दर का कुर्ता तथा पाजामा पहनते है। उनकी रहन-सहन बहुत सीधी है। किसी भी प्रकार का दिखावा उन्हें अप्रिय है। वे इस चमक-दमक के युग में भी निम्न-मध्यम वर्ग का जीवन व्यतित करते थे। उनके बाह्य पक्ष के बारे में डॉ. प्रकाशचंद्र भट्ट के शब्दों में - ''दुबला-पतला शरीर, मोटे खद्दर का कुर्ता, पजामा, मझोला कद आँखों पर ऐनक, पैरों में चप्पले, चेहरेपर उत्साह और पीडित वर्ग के प्रति व्यथा की मिली-जुली प्रतिक्रिया के भाव यही नागार्जुन है।''[4] यही सत्य है। उनका खान-पान अत्यंत सादा था। वे सुस्वादु पदार्थों के प्रशंसक भी थे। वे निरामिष भोजन करते थे। उन्हें सामिष भोजन से घृणा नहीं थी। लेकिन वे दमे के रोगी थे इसलिए उन्हें अधिकतम गरम पानी का प्रयोग करना पडता था। वे नागरिकता के आधुनिक कुप्रभाव से अछूते थे। ग्राम्यत्व उनके जीवन का आभूषण है और सरल जीवन का सौष्ठव उनके व्यक्तित्व का प्रमुख आकर्षण ।

❋ यायावर बाबा :-

नागार्जुन यायावरी स्वभाववाले बाबा गाँव से निकलकर देश के कोने-कोने में निरंतर भ्रमण करते हुए जनसाधारण से एकाकार होने के क्रम में निरंतर सत्य की खोज में सलग्न रहे। इस खोज के पीछे मानवता के कल्याण की भावना सन्निहित थी। सत्य को बार-बार जाँचने-परखने के कारण साम्यवादी सहित विभिन्न राजनीतिक संगठने और आंदालनों के साथ उनके जुड़ने और अलग होने की बात सामने आती है। यायावरी प्रवृत्ति के कारण 'यात्री' नाम से प्रतिक हो गए।

❋ अंतरंग व्यक्तित्व :-

"जीवन की सादगी, सरलता, स्पष्टवादित और खुलापन नागार्जुन के व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष की मूलभूत विषेशताएँ है।"[5] साथ ही एकांत प्रेमी, स्वाभिमानी, स्वभाव से विद्रोही, आडंबर और प्रदर्शन से बेहद नफरत आदि मुलभूत विशेषताएँ है। जीवन के कठोर संघर्षो में तपकर उनका व्यक्तित्व कुंदन की भाँति निखरा है दु:ख किसी को माँजता हो या न माँजता हो, नागार्जुन के व्यक्तित्व को उसने पूरी तरह माँजकर चमकाया है।

नागार्जुन के व्यक्तित्व को निखारने में उनके व्यक्तिगत जीवन के कटु संघर्षो के अलावा उस प्रगतिशील और वैज्ञानिक विचारदर्शन का योग भी है। जिसकी प्रारंभिक दिक्षा उन्हें स्वामी सहजानंद से मिली और जिसने उनके जीवन के निर्णायक और नाजुक मोडपर उनकी ओस्या को नया संबल, उनके संकल्प को नई दीप्ति और उनकी जिजीविषा की नई तेजस्विता प्रदान की। सरलता सादगी और सौम्यता के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व में वज्र-कठोर दृढता भी है।

निष्कर्ष :-

नागार्जुन के बाह्य और आंतरिक पक्ष को देखकर ऐसा लगता है कि वे एक सबल व्यक्तित्व के धनी है। उनके व्यक्तित्व में सरलता और दृढता का अद्‌भुत समन्वय है। वे हिंदी साहित्य में मजदूरों, किसानों, दलितों-पीडितों के पक्षधर बनकर उपस्थित हुअे थे। स्वयं अभावों में पैदा होकर उन्होंने पीडित वर्ग के कष्टों को उन्होंने झेला है। निस्संदेह वे भारत के सर्वहारा वर्ग के सच्चे सांस्कृतिक

प्रतिनिधि बनकर साहित्य सर्जन में लीन है। अपने प्रति लापरवाह किंतु समाजहित में सतत चिंतनशील। यह साहित्यकार दलित वर्ग के प्रति कितना संवेदनशील है - यह उनकी औपन्यासिक कृतियों से भली भाँति स्पष्ट होता है।

कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, निबंधकार, स्तंभ लेखक के रुप में उनकी कलम ने उन्हें विविधता और संपन्नता का रचनाकार बना दिया। नागार्जुन उन दुर्लभ रचनाकारों मे से एक है जिन्होंने जीवन को जैसा जिया और देखा वैसा ही चित्रित किया । वे देश की समस्याओं के प्रति सलग्नता, समझदारी, यथार्थ बोध और क्रांति की भूमिका लेकर साहित्य सृजन में प्रवृत्त हुए। उनका साहित्य अन्य प्रगतिवादियों की तरह केवल यथार्थ की सीमा में सत्यान्वेषण के, बौद्धिक धरातल पर वस्तुगत सत्य की उपलब्धि मात्र बनकर ही सामने नहीं आया बल्कि उनमें रागात्मक तरल स्वर भी भर दिया।

कृतित्व :-

उपन्यासकार नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति है। उन्होंने उपन्यास, काव्य, आलोचना, निबंध, अनुवाद, बालसाहित्य आदि साहित्यिक विधाओं को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। हिंदी, मैथिली और संस्कृत तीनों ही भाषाओं में उन्होंने साहित्य-रचना की है। संपादक के रुप में वे अपना स्थान बना चुके है। साहित्य सदन, आबोहर (पंजाब) से निकालनेवाली मासिक पत्रिका 'दीपक' का उन्होंने सन 1935 से सफलतापूर्वक संपादन किया। इसके अतिरिक्त लाहौर (पाकिस्तान) से निकलनेवाले साप्ताहिक पत्र 'विश्वबंधु' तथा हैदराबाद से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'कौमी आवाज' का भी उन्होंने सन 1942-43 में संपादन किया।

उपन्यास :-

हिंदी उपन्यास में समाज के यथार्थ रुप का चित्रण प्रेमचंद युग से प्रारंभ हुआ है। उन्होंने साहित्य के माध्यम से अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद की। प्रेमचंद की इसी परंपरा को आगे बढाने का श्रेय नागार्जुन को है। उन्होंने भारत के बहुसंख्य श्रमजीवी किसान और मजदूर के जीवन को अभिव्यक्ति दी है। उनके कथा साहित्य का मुल स्वर साम्राज्यवाद तथा सामन्तवाद विरोधी है।

नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा - पूर्णिया जिले का राजनीतिक- सांस्कृतिक चित्रण मिलता है। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में - ''जहाँ तक विषय वस्तु के चुनाव का संबंध है, वे प्रेमचंद की परंपरा में आते है पर दृष्टि बिंदु के हिसाब से वे यशपाल की परंपरा के लेखक है, किंतु इन दोनों को समन्वित करना कठिन हो गया है। इसलिए उनकी औपन्यासिकता क्षरित नहीं होती, जबकि नागार्जुन का मार्क्सवादी दृष्टिकोन गाँव की थीम पर आरोपित प्रतीत होता है। उनके उपन्यासों के कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार चलता है। फलत: उपन्यासों की सर्जनात्मकता शिथिल तथा अवरुद्ध हो गई है।''[6] डॉ. त्रिभुवनसिंह के शब्दों में - ''समाजवादी यथार्थवाद को आदर्श मानकर लिखनेवाले उपन्यासकारों में नागार्जुन एक विशिष्ट स्थान तो रखते ही है, साथ ही आँचलिक उपन्यासों के प्रवर्तकों में भी वे अगली पंक्ति में बैठने के अधिकारी है।''[7] नागार्जुन के आरंभिक उपन्यास उस काल के लिखे हुऐ और प्रकाशित है जब हिंदी-साहित्य में आंचलिक उपन्यास शिर्षक से उपन्यासों का वर्गीकरण भी प्रारंभ नहीं हुआ था।

नागार्जुन के आंचलिक कहे जानेवाले उपन्यासों में अंचल विशेष- मिथिला का जन-जीवन, वहाँ का भूगोल तथा प्राकृतिक वातावरण सजीव हो उठा है। मैथिल आँचल के ग्रामीण जीवन, रीति व्यवहार, सदाचार, लडाई झगडे, इर्ष्या-द्वेष एवं स्नेह, बोली-बानी तथा पहनाव आदि सभी की झाँकि मिलती है। इसके अतिरिक्त नई राजनीतिक चेतना के प्रति जागरुकता तथा ग्रामीणों के अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का जीवंत चित्रण भी मिलता है। यथार्थवादी शैली में चित्रित इन उपन्यासों में वस्तु-वर्णन की सजीवता, वातावरण की चित्रोपमता, पात्रों के चरित्र में स्वाभाविक विकास तथा पात्रों के पारस्परिक संघर्ष गौरव प्रदान किया है। यह उपन्यास ग्रामजीवन का आईना ही है। प्रेमचंद के बाद ग्रामीण जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति बाबा के उपन्यासों में हुई है।

नागार्जुन के गद्‌य साहित्य के विषय में विविधता मिलती है। 'पारो', 'नवतुरिया', तथा 'बलचनमा' उनके द्‌वारा रचित मैथिली के उपन्यास है। 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे' 'दु:खमोचन', 'कुंभीपाक', 'उग्रतारा' उनके प्रसिद्‌ध,

हिंदी उपन्यास है। नागार्जुन को समीक्षक 'आंचलिक उपन्यासकार' के रुप में अधिक पहचानते है। ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति के यथार्थ चित्रांकन के कारण ही उन्हें आंचलिक उपन्यासकार के रुप में सम्मनित किया गया। 'पारो', 'बलचनमा' मैथिली से हिंदी में अनूदित उपन्यास ऐसा प्रतीत होता है। उपन्यासों में उपन्यासकला का सौंदर्य तथा आंचलिकता की अपनी महक बरकरार है। नागार्जुन के उपन्यासों में कथा-गठन तथा औपन्यासिक सर्जनात्मकता अपने वैभव के साथ, प्रकट हुई है। डॉ.सुषमा धवन ने इस संदर्भ में लिखा है - 'नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित जीवन भारतीय कृषक का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, वरन एक क्षेत्र विशेष पर आधारित होने के कारण आपकी रचनाएँ आंचलिक उपन्यास की कोटी में परिगठित की जाती है। इन उपन्यासों का परिवेश विस्तृत होने की अपेक्षा अधिक गहन होता है निम्न तथा मध्यम वर्ग के जीवनखंडों के अलग-अलग चित्र भिन्न-भिन्न उपन्यासों में मिलता है।''[8]

रतिनाथ की चाची :-

सन 1948 में प्रकाशित नागार्जुन का यह प्रथम उपन्यास है। मुख्य कथानक एक ग्रामीण विधवा तथा मातृहीन रतिनाथ के दुखभरे जीवन के इर्द-गिर्द समाया हुआ है। ''लेखक ने रतिनाथ को केंद्र में रखकर मिथिला प्रदेश में फैले ब्राह्मण-अब्राह्मण, जाति-पाँति, अनमेल विवाह, युवा-विधवाओं की दयनीय स्थिति के साथ-साथ ग्रामीण जीवन का सामाजिक तथा आर्थिक संघर्ष उजागर किया है।''[9]

विधवा गौरी याने रतिनाथ की चाची का अपने विधुर देवर जयनाथ द्‌वारा वैधव्य जीवन खंडित होता है। वह गर्भ धारण कर लेती है। लेकिन स्वयं बदनामी की पीडा को सहकर भी जयनाथ के नाम को कलंकित नहीं करती। स्वयं समाजद्‌वारा बहिष्कृत होकर जीवन कष्टो में पिसती रहती है। उसकी माँ उसका गर्भ गिरा देती है। गौरी का पुत्र उमानाथ उसका तिरस्कार करता है। किंतु जयनाथ का पुत्र रतिनाथ ही उसके लिए प्रेम तथा सहानुभूति का एक मात्र आधार बन जाता है। जीवन के अंत तक कष्ट सहते हुये मर जाती है।

अंचल का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र कहीं-कहीं टाइप पात्र के अतिरिक्त और विशेष प्रभाव नहीं छोडते है। रतिनाथ मुख्य पात्र है। जिसकें आस-पास कहानी चक्कर काटती है। वही एक ऐसा पात्र है जो संपूर्ण रहस्यों से अवगत है। गौरी के अंतिम संस्कार के बाद वह मन-ही-मन बुदबुदाता है - अस्थि गंगा में प्रवाहित करके लौटते समय हृदय में बार बार यह बात उठ रही थी कि अमावस की उस रात कौन था? चाची एक घनी अँधेरी छाया तुम्हारे बिस्तर की तरफ बढ आयी थी, वह क्या थी चाची? शील और शालीनता का प्रतिमूर्ति तुमने क्यों नहीं उस धूर्त का नाम बतला दिया।

गौरी भारतीय संस्कृति में पली नारी का उदाहरण है। ग्रामीण महिला गौरी के नैतिकता का अन्य उदाहरण और क्या होगा ? स्वयं जीवनपर्यंत अपमान और घृणा के जहरीले घूँट पीकर तिल-तिल करती रही किंतु परिवार की प्रतिष्ठा पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगने दिया। ग्राम्य महिला गौरी सामाजिक कुंठाओं में पिसते-पिसते चुक गई। किंतु कभी भी विरोध प्रकट नहीं किया।

इस उपन्यास की पात्र-योजना, वातावरण निर्मिति तथा कथा-विकास में आंचलिकता का प्रभाव है। प्रगतिशील लेखक नागार्जुन में व्यंग्यपूर्ण यथार्थ शैली में सामाजिक दंभ, नैतिकता की मिथ्या परंपराओं तथा युवती विधवा के अभिषेपित जीवन पर तिखा प्रहार किया है। दु:खित नारी गौरी की समाजवादी प्रवृत्ति को उजागर कर लेखक ने अपनी समाजवादी धारणा का रोपण प्रस्तुत कर दिया है। रुस की विजय की कामना, पात्र पर लदा हुआ और अस्वाभाविक प्रसंग लगता है। 'रतिनाथ की चाची' आंचलिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यास है।

बलचनमा :-

सन 1952 में प्रकाशित यह उपन्यास एक सर्वमान्य श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास का नायक अनैतिक जीवन बिताने वाले जमीनदारों के चक्र में फँस जाता है और आजीवन संघर्षरत रहता है। संघर्षमय जीवन जीते हुअे अंत में अपने लक्ष्य प्राप्ति की ओर बढ़ता है। संपूर्ण कथानक बलचनमा की आप बीती है। इसलिए यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। अरोडा के मतानुसार -" 'बलचनमा' सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास है किंतु लेखक की भूमिका

विशुद्ध कलाकार की नहीं हैं। लेखक ने तटस्थ दृष्टि से ग्रामीण जीवन की ओर देखने का प्रयास नहीं किया है। नागार्जुन की साम्यवादी विचारधारा की स्पष्ट छाप उपन्यास पर दिखाई देती है।''[10] बिहार के दरभंगा जिले के देहाती जीवन पर आधारित यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें एक परिश्रमी, ईमानदार और साधनविहीन किसान की जीवनगाथा है। प्रेमचंद के 'गोदान' होरी की भाँति 'बलचनमा' संपूर्ण भारतीय-कृषक के जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। बलचनमा आधा खेत मजदुर तथा आधा किसान है।

प्रेमचंद के 'गोदान' में कुलबुलानेवाली भारतीय किसान की चेतना 'बलचनमा' में जाग जाती है। वह शहर आकर कांग्रेस-पार्टी के अंतर्विरोध को देखता और समझता है। वह देखता है कि किस तरह फूलबाबू गाँधी बाबा बनकर अंग्रेजों का विरोध करते है और रेवती से बलात्कार की चेष्टा करने वाले जमींदार का विरोध करने पर आनाकानी करते है। बलचनमा का भ्रम टुटता है। वह अपने जीवन को सुखी बनाने और अपने अधिकारों के लिए जान की बाजी भी लगा देता है। 'बलचनमा' चरित्रप्रधान 'महाकाव्य' माना गया है।

उपन्यास का नायक बलचनमा है और उपन्यास का शीर्षक भी 'बलचनमा' है। फिर भी उपन्यास में नायक के व्यक्तिगत चित्रण की अपेक्षा वहाँ के आंचल निष्ठ जन-जीवन का महत्व अधिक है। उपन्यास में बलचनमा की 14 से 22 वर्ष तक की अवस्था का चित्रण लेखक ने किया है। कहना होगा कि बलचनमा नायक होते हुऐ भी उपन्यास की कथा का नायक नहीं है। उपन्यास में सामूहिक चरित्र-चित्रण अधिक उभरा है। बलचनमा एक सामान्य किसान है, जमीन का मालिक और एक साधारण मजदूर भी जो दूसरों के खेत बटाई पर लेता था, उसका चरित्र-चित्रण इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला है।

लेखक की साम्यवादी विचारधारा का, लाल झंडे. किसान सभा या हँसुआ-हथौडे का स्पष्ट प्रभाव बलचनमा और उसके देहाती बांधवों पर दिखाई देता है। राधाबाबू और कुछ अंश में मोहनबाबू को छोड सब जमीनदारों या बडी जातवालों का चित्रण पूर्वग्रह दूषित दृष्टि से किया गया है।

स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का लेखक ने बडा करुण वर्णन किया है। बलचनमा कहता है - ''गरीबी नरक है भैया, नरका चावल के चार दाने छींटकर बहेलिया जैसे चिडियों को फँसाता है, उसी तरह से दौलतवाले गरजमंद औरतों को फाँसा मारते है।''[11] किसी की इज्जत-आबरु बेदाग रहने देना उन्हें बर्दाश्त नहीं था क्योंकि मालिक जब नौजवान थे तो इसी गाँव में दुअन्नी के बदले जवान लडकी मिलती थी।

तात्कालीन राजनीतिक वातावरण का प्रभाव भी उपन्यास में झलकता है। आश्रय जीवन का चित्रण भी विस्तार से किया गया है। जन-जीवन के चित्रण में उनका रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, लोकविश्वास, अंधश्रद्धा, परंपरा आदि का सजीव रुप चित्रित किया है। बलचनमा का व्यक्तित्व चित्रण इतना सशक्त बनकर नहीं उभरा है फिर भी उसके अंतर्मन की शक्ति, सात्विकता तथा तेजस्विता मनोत्पन्न विचार द्वारा स्पष्ट हो जाती है।

उपन्यास में आंचलिक भाषा तथा बोली का अधिक मात्रा में प्रयोग हुआ है जो इसकी आंचलिकता पर गर्वीली मुहर लगा देती है। एक लोकगीत भी इसमें मिलता है। स्थानीय शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए फुट नोट दे दिये गये है।

नई पौध :-

1953 में प्रकाशित इस उपन्यास में मैथिल ब्राह्मणों की कुरीति का उद्घाटन किया गया है। लडकी को पुश समान बेचने की कुरीति जिसका विरोध नई पिढी ने जमकर किया है। नई पौध से अभिप्राय है 'युवा पीढी'।

युवा पीढ़ी समय के एक अंतराल के साथ चिंतन के प्रति क्रियाशील होती है। उनमें क्रांति के बीज, नई विचारधारा के साथ मिलकर प्रस्फुटित होते है।

कथा विषय अति संक्षिप्त है किंतु समस्या सर्वजनीन है। भागवत की कथा अपनी मीठी आवाज में सुना-सुनाकर खोखा पंडित बडे प्रतिष्ठित और सम्मानित बने थे। उसी स्वार्थी, धनलोलुप,

निष्ठुर पंडित ने अपनी छ: कन्याओं को पैसे लेकर अपात्रों के हाथ बेचा था। अब वह अपनी सुंदरी नतिनी बिसेसरी को भी एक हजार रुपये लेकर साठ साल के बूढे पाँच लडकों के बाप पंडित चतुरानन चौधरी को देनेवाले थे। गाँव की नवयुवक मंडली ने इसका विरोध किया। भारी विरोध के कारण बारात वापस लौट जाती है। ग्राम्य जीवन जिन विषमता और विसंगतियों के मध्य जी रहा है, उसका यह एक उदाहरण है, विकट समस्या है। लेखक ने जिस गंभीरता के साथ समस्या को प्रस्तुत किया है, उतनी ही सरलता से समाधान भी कर दिया है। यह समस्या युवा पीढ़ी की रुढ़ियों को काट फेंकनेवाली, नई दिशा की नई रोशनी दिखानेवाली प्रवृत्ति द्वारा समाधान पाती है। विद्रोही नवयुवकों को ऐसी समस्याओं से संघर्ष करते हुअे त्याग की अहं भूमिका का भी निर्वाह करना होता है। इस उपन्यास में नायक दिगंबर वाचस्पति बेससरी के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करता है। तथा युवा मानस को नवसंदेश से आलोड़ित भी करता है।

यह नई पौध गाँव की नई पीढी है जो प्रगतिशील, समाजवादी एवं संघर्षशील बनती जा रही है। नवीन मानवीय मूल्यों पर आधारित नवीन सामाजिक चेतना को आवाज देने का सफल प्रयत्न नागार्जुन ने किया है। जागतिक के अहंकार, झूठा कुलाभिमान, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा आदि के चित्रण द्वारा आंचलिक वातावरण की निर्मित होने में सहायता पहुँची है।

यद्यपि बिसेसरी की कथा उपन्यास का केंद्रबिंदु है किंतु उसी के माध्यम से लेखक ने संपूर्ण अंचल विशेष की बोली बानी, वेशभूषा, सौराठमेला जैसी परंपराएँ, उनकी धनलोलुपता आदि के वर्णन द्वारा लोक जीवन को मुखरित कर उपन्यास को यथार्थमय बना दिया है। इतना ही नहीं अंचल की प्रकृति के सुंदर चित्र भी उकेरे गये है। इस सफल आंचलिक उपन्यास में कही भी कृत्रिमता या अस्वाभाविक घुमाव-फिराव नहीं है।

बाबा बटेसरनाथ :-

1954 में प्रकाशित इस उपन्यास का नायक एक वट-वृक्ष है। उपन्यास शिल्प की दृष्टि से यह एक नवीन प्रयोग है। एक वटवृक्ष के द्वारा संपूर्ण गाँव का पिछले सौ वर्षों का लोक-जीवन

चित्रित करने का लेखक ने नया तथा सफल प्रयोग किया है। अपने सौ वर्षो के जीवनकाल में उस वट-वृक्ष ने पूरे गाँव का उत्थान-पतन देखा है। जब वह जमींदारों के शोषण, किसानों के अंधविश्वास, रुढियों आपसी कलह, स्वतंत्रता की उमंग, त्याग तथा बलिदान की दुहाई देने वाले स्वार्थी काँग्रेसियों तथा शासन की कथनी-करनी का भेद उद्घाटित करता है तब सारा युग उस में साकार हो उठा है। जैकिसुन इस कथानक का श्रोता है। उसके परदादा ने यह वटवृक्ष लगाया था। वटवृक्ष में मानवीकरण तथा प्रबुद्धता की स्थापना लेखक का एक अनोखा और सराहनीय प्रयोग है।

बिहार के रुपउली गाँव के लोक-जीवन के साथ-साथ देशव्यापी स्वाधीनता-आंदोलन की झाँकी प्रस्तुत की गई है। कहानी तथा आत्मकथा को यथार्थ रुप में प्रस्तुत करने के लिए वास्तविक तिथियों का उपयोग घटनाओं के साथ किया गया है। वटवृक्ष केवल संवेदनशून्य, निर्जीव नहीं वरन सजीव पात्र के रुप में चित्रित है। इसमें राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं के साथ प्राकृतिक विपत्तियों का भी उल्लेख मिलता है। उपन्यास में अंत में नागार्जुन ने कम्युनिस्ट प्रभावित गाँव की किसान सभा की विजय की ओर भी आशादायक संकेत किया है। एक युग का चित्रण होने के कारण, पात्रों की संख्या इतनी अधिक हो गयी है कि कथा विकास की सुसंगति तथा भावात्मक विस्तार में बाधा सी उत्पन्न हो गयी है। कारण के सभी पात्र अंचल विशेष के नहीं, बाहर के भी है। इसीलिए इस उपन्यास को आंशिक रुप में आंचलिक मानने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए।

वटवृक्ष के माध्यम से लेखक ने जीवंत सांस्कृतिक संदेश भी स्थापित किया है। ''जीने के लिए जीना नहीं है, परोपकार के लिए जीना ही जीना है।''

''संगठन ही शक्ति है ---।'' झींगुर एक कीडा होता है। सैकडों हजारो की तादाद में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते हैं तो एक अजीब समा बँध जाता है। झींगुरों की यह अखंड झंकार कई-कई प्रहर तक चलती रहती है। सामूहिक स्वर की इस एकाग्र महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहता है और होता रहेगा। ''

इससे लेखक का उद्देश्य भी स्पष्ट होता है कि क्रांति का उदय व्यक्ति चेतना से नहीं वरन समाष्टि चेतना से होगा। वर्तमान की समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए एक व्यक्ति समर्थ नहीं हो सकता है, सामूहिक एकता की चेतना ही क्रियाशील हो सकती है। वटवृक्ष के माध्यम से दोहराया गया चार पीढ़ियों का इतिहास, केवल इतिहास ही नहीं वरन् सामाजिक शिलालेख है।

दु:खमोचन :-

सन 1957 में प्रकाशित इस उपन्यास में टमकाकोइली ग्राम के नवनिर्माण की कथा है। नायक दु:खमोचन सचमुच दुसरों के दु:ख दूर करने में ही व्यस्त रहता है। यह पात्र उदात्त भावनाओं से युक्त सुशिक्षित, ग्रामीण व्यक्ति है। वह आंचलिक संस्पर्श से युक्त इस उपन्यास का आदर्शवादी पात्र है किंतु उपन्यास का कथानक यथार्थवादी ही है। युवा पत्नी की असामायिक मृत्यु के कारण दु:खमोचन अधिक संवेदनक्षम तथा दूसरों के दुखों के प्रति अधिक करुणामय हो जाता है। गाँव में जहाँ कहीं सहायता और सुरक्षा की जरुरत पडती है, दु:खमोचन वही उपस्थित होता है। गाँव की कुछ बस्तियाँ जल जाती हैं तब उनके पुननिर्माण के कार्य का नेतृत्व करनेवाला है, दु:खमोचन। गाँव की समस्याएँ कम नहीं, जात-पाँत का टंटा, खानदानी घमंड, दौलत धौंस, नफरत का नशा, अशिक्षा का अंधकार, लाठी की अकड, रुढ़ि और परंपरा का बोझ, अनेक ऐसी बाधाएँ है जो गाँव की उन्नति होने नहीं देतीं। नागार्जुन ने अपनी मानवतावादी तथा गाँधीवादी दृष्टि का परिचय बुजुर्ग बौधु चाचा द्वारा झंडा फहरवाकर किया है। दु:खमोचन के इर्द-गिर्द घुमनेवाले मामी, अपर्णा, टेकनाथ, लीलाधर, कपील, माया आदि सभी पात्र सजीव लगते है। लेखक की प्रगतिशील दृष्टि यह भलीभाँति पहचानती है कि देश का विकास जन-संगठन एवं जनशक्ति पर आश्रित है। इसीलिए नागार्जुन ने दु:खमोचन को केंद्र में रखकर गाँव का नव-निर्माण तथा नव-निर्माण की चेतना का संसार ग्रामवासियों में कराया है।

''दु:खमोचन उपन्यास कलात्मक दृष्टि से 'नई पौध', 'बलचनमा' आदि उपन्यासों से अधिक प्रभावशाली है क्योंकि साम्यवादी दृष्टिकोण की प्रचारात्मक प्रवृत्ति, पात्रों पर आरोपित नहीं हुई है। इसका नायक किसानों में नई चेतना भरता है।''[12]

वरुण के बेटे :-

सन 1957 में प्रकाशित यह उपन्यास, मछुआ परिवारों की सुख-दु:ख की कहानी है। यह वर्ग-संघर्ष की कथा है। जमींदार तथा मछुआ जाति का संघर्ष इसकी पृष्ठभूमि है।

गढ़पोखर सदियों से इन मछुआरों की जीविका का सहारा रहा था। स्वतंत्रता पूर्व तो उन पर जमींदारों का अधिकार था ही, स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी उनी जमीनदारों का उस पर अधिकार बना रहा। मोहन माँझी जैसा सुशिक्षत साहसी युवक मछुआरों में आत्मविश्वास जगाता है, उन्हें अपने अधिकार के लिए सजग कर संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। यही युवक नेता मोहन माँझी मैथिल, राजपूत, यादव, दुसाध आदि सांप्रदायिक महासभाओं का विरोध करता है। उन्हें यथार्थ से परिचित कराने के लिए किसान-सभा में उपस्थित होने का आग्रह करता है। देपुरा का जमींनदार गंगासाहनी को अपने पक्ष में कर मछुआ संघ में फूट डाल देता है। फिर भी मोहन झॉसी का नेतृत्व में संघर्ष तीव्रतर होता जाता है। शिक्षित युवक नेता मछुआरों को उनके हक के प्रति सचेत कर देता है कि जमींदारी निर्मूलिन हो चुका है। अब जनता ही मालिक है। इन गरीब श्रमजीवियों की दयनीय स्थिति और दाल-भात की आकांक्षाओं की अतृप्ति का यथार्थ चित्रण किया गया है। असाह्य वेदना उनके अंदर क्रांति के बीज बो देती है। अपने अस्तित्व की रक्षा तथा अधिकार की माँग 'मछुआ संघ जिंदाबाद' का नारा बुलंद करवा देती है। संघ चिंतन - ''इंकबाल जिंदाबाद--- मछुआ संघ जिंदाबाद --- हक की लडाई जीतेंगे। जीतेंगे । ---- गढ़पोखर हमारा है, हमारे है?'' का नारा गुँजने लगता है।

उपन्यास के पात्र तथा घटनाएँ आँचलिक है। संपूर्ण अंचल जो सागर के किनारे शुष्क रेतीली भूमि पर झोपडपट्टी में रहकर, कठोर परिश्रम करके भी दो जून की रोटी नहीं खा पाता, साकार हो उठा है। लोकगीत तथा लोककथा ने इस उपन्यास को चित्रात्मक तथा मुखर बना दिया है। मंगल के प्रति प्रेमभाव संपूर्ण मधुरी का गीत, चुल्हाई का मधुरी के लिए गीत, कमला मैया का वंदना-गीत, मछलियाँ पकडने जाल फेंकते समय का गीत अति भावपूर्ण है। प्रतिनिधि पात्रों द्वारा आंचलिक बोली का प्रयोग उसे और भी सौंदर्य प्रदान करता है।

इस उपन्यास में भी लेखक की साम्यवादी प्रगतिवादी जनवादी विचारधारा का पूर्ण प्रभाव है किंतु कहीं भी आरोपण या कृत्रिमता कथावस्तु में दिखाई नहीं देती। क्रांतिमय गतिविधियों का चित्रण इतने स्वाभाविक रुप में हुआ है कि लेखक की प्रगतिशील चेतना कथावस्तु का अभिन्न अंग बन गई है। इस लघुकाय उपन्यास में मछुआरों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी स्थितियों का यथार्थ अंकन हुआ है। बिहार के मलहि गोदियारी ग्राम के मछुआरों के जीवन की गाथा से सराबोर यह आंचलिक उपन्यास अतिप्रभावी बन पड़ा है।

कुंभीपाक :-

सन 1960 में प्रकाशित इस उपन्यास को डॉ. लक्ष्मीकांत सिन्हा ने आंचलिक उपन्यास माना है किंतु डॉ. कु. शकुंतला के विचार में इस उपन्यास में आंचलिकता नगण्य है। हमारे विचार में इसमें आंचलिकता का संपूर्ण बोध नहीं है। अरोडा के मतानुसार - ''यद्यपि कथा का आरंभ अंचल विशेष से हुआ है। लेकिन मध्य और अंत में लेखक नागरीय जीवन की ओर मुड गया है। इसे नागरी आंचलिक उपन्यास कह सकते है।''[13] इस कृति के संदर्भ में नागार्जुन का आत्मकथ्य है कि, 'कथावस्तु के नाम पर उसमें एक नारी की कहानी है, जो 19 वर्ष की अल्पायु में विधवा हो चुकी है। चार महिने के गर्भ को गिराने के लिए कोई रिश्तेदार उसे आसनसोल ले जाता है, और धर्मशाला में अकेली छोडकर चला आता है। तब से दो वर्ष इंदरा के कैसे कटे हैं ? यह बात धरती जानती होगी या आसमान जानता होगा।'

इसमें यह ऐसी महिला की पीड़ा की कथा भी है, जो भावुकता के नाम पर अपना सर्वस्व लुटाकर अकेली रह गई। जीवन के अनेक वर्ष क्रंदन और रिक्तता में बिताते हुए भी अपने को खंडित नहीं होने देती। लेखक ने उसे विनाश से बचाकर सृजन की ओर गतिशील किया है। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बन उसका आत्मविश्वास दृढ हो जाता, लेखक ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि आंचलिकता में ही पीड़ाओं, कष्टों और विपत्तियों का बोझ नहीं है। महानगर की गोद में भी कष्ट, पीड़ा, हीनता, कुंठा, संत्रास सभी कुछ है। वस्तुत: ये समस्याएँ ग्राम या नगर की समस्याएँ नहीं वरन् मानव-मात्र की समस्याएँ है। लेखक ने ग्राम्य तथा नगर की समस्याओं का समन्वय करते हुअे कथानक को जीवंत रुप प्रदान किया है।

नागरी आंचलिक उपन्यास होने के कारण इसकी भाषा भी साहित्यिक है। पटना की एक बड़ी चाल में रहने वाले अनेक किरायदारों को आधार बनाकर लिखे गये इस उपन्यास में समाज में प्रचलित अनैतिकता, भ्रष्टाचार, स्त्रियोंपर अत्याचार आदि का विस्तृत वर्णन है। इस उपन्यास में नारी समाज की दुखती रगपर लेखनी चलाकर उसमें नयी चेतना तथा नई आस्था के निर्माण का प्रयत्न किया है। भुवनेश्वरी, चंपा, मामी, कुंती ये सभी इसी दृष्टिकोण के उदाहरण है। उपन्यास पढ़कर पात्रों के प्रति घृणा या क्रोध नहीं वरन करुणा भरी संवेदना मन में जाग्रत हो जाती है। नारी को मात्र भोग्या समझानेवालों पर क्रोध और घृणा उपजती है। उपन्यास के बीच-बीच में लेखक ने साहित्यकारों तथा राजनीतिज्ञों पर करारा व्यंग्य किया है। भाषा साहित्यिक होते हुअे भी सुबोध तथा विचारगम्य है।

हीरक जयंती :-

सन 1961 में प्रकाशित यह कृति व्यंग्यप्रधान कृति है। इसमें वर्तमान राजनीतिक तथा तथाकथित नेतागिरी पर करारा व्यंग कसा गया है।

कथानक मात्र इतना है कि बाबू नरपति नारायणसिंह की इकहत्तरावीं वर्षगांठ हीरक जयंती के रुप में आयोजित होती है। समारोह में सदस्यों तथा बाबूजी का अति व्यंग्यपूर्ण परिचय प्राप्त किया जाता है। मंजुमुखी देवी पर व्यंग्य किया जाता है। नरपति नारायण का पुत्र पुलिस द्वारा बंदी बनाया जाता है किंतु पुन: रिहा भी हो जाता है। उनकी लडकी घर छोडकर भाग जाती है।

इस उपन्यास में आंचलिकता का कोई स्पर्श, वर्णन नहीं है। पात्र उच्चमध्यमवर्गीय परिवार के सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते है। जहाँ पार्टी आदि के आयोजन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। अपनी सांस्कृतिक परंपरा तथा संतान के चरित्र गठन का कम ध्यान रखा जाता है। लेखक व्यंग्यशैली का दामन यहाँ भी पकडे हुअे है, जरुरी भी है। अन्यथा 'हीरक जयंती' समारोह की शोभा सजावट और व्यवहारिक स्तर पर की कृत्रिमता उजागर न हो पाती।

उग्रतारा :-

सन 1969 में प्रकाशित यह उपन्यास बंदीगृह की पार्श्वभूमि पर आधारीत है। कामेश्वर राजपूत नौजवान है। उसका बीस वर्ष की उम्र में विवाह हुआ और छ: महिने बाद वह विधुर हो जाता है। उग्रतारा का पति स्टीमर दूर्घटना में काल कवलित हो गया था। कामेश्वर की प्रगतिशील विचारवाली भाभी इन दोनों को समीप आने का अवसर देती है। उग्रनी अपने वैधव्य जीवन का बोझ उठाने में अपने को असमर्थ पाती है। दोनो गाँव से भाग निकलते है। पकडे जाने पर जेल की सजा होती है। उग्रनी एक महिने की सजा देकर रिहा कर दी जाती है लेकिन कामेश्वर की सजा के अभी आठ महिने और बचे है। जेल से बाहर आकर अपनी सुरक्षा के प्रति भयभीत उग्रनी पचास वर्ष के कुंवारे जमादार सिपाही भभीखनसिंह के आश्रय में रहना स्वीकार कर लेती है। वह उसे जबरदस्ती पत्नी बना लेता है। इसी बीच उग्रनी गर्भवती हो जाती है। जेल से रिहा होकर कामेश्वर उसे ढूँढता हुआ वहाँ पहुँच जाता है और उग्रनी को लेकर दूर चला जाता है। कामेश्वर नवभारत का युवक है जिसने बिना हिचकिचाहट से पर पुरुष का गर्भधारण करनेवाली उग्रनी के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया है। उपन्यास की समस्या मात्र विधवा या विधुर विवाह की नहीं है वरन् उग्रतारा के जीवन की यथार्थता का चित्रण भी है।

उग्रतारा मे परिस्थितियों से टक्कर लेने की क्षमता है। जिस साहस और विश्वास के साथ वह कामेश्वर के साथ भागी थी उसी भावना से वह भभीखन सिंह के आश्रम में भी आठ महिने तक रही। बाद में फिर से हिम्मत करके कामेश्वर के साथ भागकर उसकी पत्नी बनी। उपन्यास के पात्र टाइप नहीं है। प्रत्येक पात्र का अपना-अपना व्यक्तित्व है। कामेश्वर, उग्रनी, भाभी, भभीखन सिंह, गीता, तिवारी की बीबी आदि पात्रों में भभीखन सिंह, गीता, तिवारी की बीबी केवल टाइप से लगते है।

'अभिनन्दन' :-

युगीन साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यासकार के रुप में नागार्जुन का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। नागार्जुन के उपन्यासों में तत्कालीन राजनीतिक चेतना को विशेष अभिव्यक्ति मिली है। जीवन में आर्थिक अभाव का अनुभव उन्होंने किया है। साम्यवाद पर उनकी गहरी निष्ठा थी। इसीलिए भारतीय पीड़ित, शोषित और पददलित समाज के वह प्रतिनिधि के उपन्यासकार बने हैं।

" 'अभिनन्दन' उपन्यास में नागार्जुन ने हमारी सामाजिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक विडंबना भरी जिंदगीपर एकदम अछूता और करारा व्यंग्य किया है। आज की भारतीय राजनीतिक स्थिति का खोखला और यथार्थ वर्णन 'अभिनन्दन' उपन्यास में किया है।"[14]

'पारो' :-

नागार्जुन का 1975 में प्रकाशित 'पारो' उपन्यास लघु उपन्यास है। और मूल मैथिली उपन्यास पारों का कुलानंद मिश्र द्वारा हिंदी रुपांतर है। इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य अनमेल विवाह के परिणाम तथा बिहार के मैथिल जनपद में विवाह की गलत परंपराओं की आलोचना करना है।

नागार्जुन के शेष उपन्यासों में 'इमरतिया' और 'जमनिया का बाबा' जो एक ही उपन्यास है। सन 1968 में दो नामों से प्रकाशित हुअे है। ये दोनों बोलकर लिखाये गये उपन्यास है। "नागार्जुन के और उपन्यासों को जिन्होंने अनुशीलन किया है, उनको नागार्जुन की मूल हिंदी के तेवर का अंदाज है ही। नागार्जुन के उपन्यासों में उत्तरोत्तर अभिव्यक्ति का विकास होता गया है। 'रतिनाथ की चाची', और 'जमनिया का बाबा' मिलाकर देखने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।"[15]

निष्कर्ष :-

नागार्जुन के व्यक्तित्व एवं औपन्यासिक कृतित्वों का सम्यक् दृष्टिपात करने के पश्चात संक्षेप में कहा जा सकता है कि उन्होंने जीवन को जिस रुप में देखा, जाना और समझा है, उससे उनके अंतरबाह्य व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। जीव नेत्रें विविध अनुभवों को स्वयं जीते हुऐ ज्यों-कां-त्यों कलम में बाँध लेना उनकी निजी विशेषता है। वे जीवन-संग्राम के अपराजेय योद्धा उदार और फक्कड मानव रुढी एवं परंपराओं के ध्वंसक, बहुश्रुत, बहुपठित, बहुभाषाविज्ञ, प्रगतिशील विचारक है। वे समाजवादी प्रतिबद्धता के साथ लिखते है। उनका ज्ञान जीवन के अनुभवों पर अधिक आदधृत है, और पुस्तकों पर कम। सामाजिक समस्या, नारी की स्थिति, विधवा का जीवन सुधार, जमींदारों की प्रवृत्ति, मनमानी, नई पीढी की चेतना आदि विभिन्न विषयों पर उपन्यास लिखकर एक क्रांति की है ऐसा लगता है।

काव्य :-

नागार्जुन का संपूर्ण कृतित्व प्रगतिशील चेतना का वाहक है। उनकी पद्य और गद्य दोनों की कृतियों में प्रगतिशीलता के विविध कोण पारदर्शी है, जिनमें मध्यमवर्गीय जीवन तथा मजदूरवर्ग की जिंदगी का संपूर्ण चित्र यथार्थ रुप में मिलता है। नागार्जुन की पहली हिंदी कविता 'राम के प्रति' 1935 में प्रकाशित हुई। तब से आजतक नागार्जुन की काव्य रचनाओं का संसार लगातार विकसित और संपन्न हुआ है। उनकी काव्यगत विविधता और रचना-सामर्थ्य उनकी क्षमता को प्रमाणित करता है, जिसे कविताओं के अध्ययन विश्लेषण से जाना जा सकता है।

बाबा ने अपने कवि और कथाकार रुप को अधिक प्राथमिकता दी। इन दोनों में परपीडा से द्रवित होकर मानवता का पक्ष लिया है, उनकी रचनाधर्मिता ने यथार्थता अधिक है। उनका काव्य सामाजिक जीवन से उपजता है। स्थितियों, वस्तुओं के भीतर से उभरनेवाली उनकी कविताएँ जीवन और अनुभव के वैविध्य को सार्थक धारणा के रुप में प्रतिष्ठापित करती है। आक्रोश, मोहभंग, विद्रोह, संघर्ष का स्वर सुनाओी देता है।

बाबा की कविता दिन-प्रतिदिन बदलती रही है। नारी चिंतन की बारीकियों को भी बखूबी समझा जाता है। मानवीय यहीं स्वर रहा है। उनमें व्यापक मानवतावादी चेतना के दर्शन होते है जिससे व्यष्टि और समाष्टिक भेद मिट जाता है। कवि की संवेदनशीलता ऐसे समय काव्य को जन्म देती है।

युगधारा :-

सन 1953 में प्रकाशित बुकलेट के रुप में कवि नागार्जुन की यह रचना प्रगतिवादी चेतना की भरी-पूरी विशेषताएँ लिये हुओी है। इसमें एक ओर 'शपथ' और 'तर्पण' जैसी कविताएँ है जिनमें गाँधी की हत्या के संदर्भ में कवि की देशभक्ति तथा राष्ट्रीयतापूर्ण वाणी व्यक्त हुई है। वही दुसरी ओर 'प्रेत का बयान' जैसी व्यंग्यशील रचनाएँ भी हैं। 'बापू' की हत्या से कवि का हृदय कराह उठा था। उसका हृदय वेदनासिक्त हो न केवल स्वयं रोया वरन संपूर्ण मानवता आँसू बहाती अनुभव हुई। उनके भावोद्गार संपूर्ण पृथ्वी को उन्मनावस्था में पाते है। इसी संग्रह की कुछ कविताओं में उन्होंने महान

कलाकारों तथा नेताओं के प्रति अपनी श्रद्धाभावना अर्पित की है। 'रवि ठाकुर' चन्दना, पाषाणी इसी वर्ग की रचनाएँ है। कवि ने निजी जिंदगी विषयक चित्र भी प्रस्तुत किये है।

कवि की समग्र काव्यचेतना के उज्वल प्रकाश की किरणे इसी संग्रह में भाषित होने लगती है। सामाजिक, राजनीतिक तथा मानवीय भूमिका पर लिखी गई, इस संग्रह की कविताएँ आस्था, निष्ठा तथा जिजीविषा की दृष्टि से ओत-प्रोत है। शैली का रुप भिन्न-भिन्न होते पर भी भाषिक तारल्य एकसा है।

काव्य और रचना के बारे में स्वयं कवि कहता है -

''कला धर या रचयिता होना नहीं प्रर्याप्त है
पक्षधर की भूमिका धारण करो
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पडेगा
अगर तुम निर्माण करना चाहते हो
शीर्ण संस्कृति को, अगर सप्राण करना चाहते हो।''

'सतरंगे पंखोवाली' :-

सन 1959 में प्रकाशित यह काव्यकृति पूर्ववर्ती संग्रहों की अपेक्षा कला और शिल्प की दृष्टि से अधिक प्रभावकारी बनी है। यद्यपि काव्यचेतना का प्रवाह वही है, जो इस संग्रह के पूर्व की रचनाओं में मिलता है। तदपि कवि का प्रकृति विषयक प्रेम तथा गंध-सुगंध के प्रति आसक्तिपूर्ण नजरिया विशेष रुप से स्थान पा सका है। जन-जीवन की पीड़ा अवसाद आदि के बीच खोया कवि व्यक्तित्व प्रकृति के आँचल में उसके उन्मुक्त सौंदर्य का पान करता है। 'बसंत की अगवानी' तथा 'नीम' की दो टहलियाँ, बरबस आकृष्ट करती है। चतुर्दिक विस्तार को नाप लेनेवाली जीवन की विषमताओं का सूक्ष्म निरिक्षण करनेवाली कवि की प्रवृत्ति इसी संग्रह में दिखाई देती है। 'सतरंगी पंखोवाली' और 'अकाल और उसके बाद', 'कालिदास', 'सिंदुर तिलकित भाल', 'कैसा लगेगा तुम्हे' तथा 'ओ जन-मन के सजग चितेरे' इस संग्रह की वे कविताएँ है जो न केवल कवि के प्रशस्त भाव तथा

सौंदर्य की परिचायक है, सामाजिक चेतना तथा कवि कर्म को एक नया आयाम भी देता है। "यो बाबा की कविताओं में तीव्र प्रतिक्रियाएँ उपस्थित रहती है जो एक व्याकुल जनकवि के व्यक्तित्व का एक अंश मात्र है। प्रेम, प्रकृति और जीवन की रागात्मकता के पहलू इस संकलन में मुखर हुए है।"[16]

'प्यासी पथराई आँखें' :-

यह सन 1962 में प्रकाशित काव्य-संग्रह है जिसमें कवि का व्यंग्यकार तथा चित्रकार का रुप अधिक गहराई तथा प्रभाव के साथ उभरकर सामने आया है। जिस कवि की विचारधारा तथा चिन्तनमय रग-रग, शोषण, अन्याय, पक्षधरता आदि के प्रति आरंभ से ही विद्राही रहा है, देश में इन स्थितियों का घनीभूत अंबार लगते देख और भी भयंकर विद्रोही क्यों नहीं बनेगा ? इस संग्रह की लगभग सभी कविताएँ आक्रमक व्यंग्य और विद्रोही भाव से व्यक्त है। शेर जंग, गर्ग के मतानुसार - "ये कविताएँ गरीब देश में सामंती परंपरा की पोषक महारानी के साथ-साथ देश के उन कर्णधारों पर भी कटाक्ष करती है जो इस सारी स्थिति के लिए जिम्मेदार है।"[17]

'भस्मांकुर ' :-

सन 1971 में प्रकाशित खंडकाव्य है। इसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा हुआ है। इन आढ्यान काव्य का कथानक पौराणिक है। सात-आठ साल तक काव्य छापने के पूर्व मित्रों को सूचित किया था, "एक हजार पंक्तियों की अत्यंत सुंदर कविता लिखी है।"

पौराणिक कथा-संकेत का सूत्र पकड़कर नागार्जुन ने अपनी प्रतिभा के बलपर इस खंड काव्य की रचना की है। कालिदास की काव्यकृति 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के मुख्य प्रतिपाद्य की भूमिका मात्र है। जब की भस्मांकुर में वही मुख्य प्रतिपाद्य है। शिवकुमार मित्र के अनुसार - "नागार्जुन के इस काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि कवि-गुरु के संस्कारों से वेष्टित होने के बावजूद वह नागार्जुन की मौलिक कवि प्रतिभा की उपज है और यह मौलिकता केवल कथावस्तु के विन्यास एवं उसके विविध प्रसंगों में ही नहीं, चरित्रों के चित्रण तथा अपने सर्वाधिक प्रखर रुप में कृति के अंतर्गत निहित उस समूची विचारधारा में देखी जा सकती है। जिसके नाते ही 'भस्मांकुर' अपनी समस्त

पौराणिक आधारभूमि के रहते हुअे एक प्रगतिशील समाजचेतना, आधुनिक कवि की कृति कहलाने का गौरव प्राप्त कर सका है।''[18]

इस खंडकाव्य में गौरवमयी स्थिति समाई हुअी है। मुख्य चरित्र शिव, पार्वती, काम, रति तथा वसंत है। कवि की वर्णन-शैली, कृति का वस्तुविन्यास, प्राकृतिक सौंदर्य चित्रण सभी खंडकाव्य के स्वरुप को मुखरित करनेवाले है। इस काव्य रुप में प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन, संवेदनात्मक तथा प्रतीकात्मक अधिक रुप में मिलते है। इस प्राकृतिक दृश्यों में देशगत, जातिगत तथा सांस्कृतिक सौंदर्य सजीव हो उठा है। इसके अतिरिक्त एक हजार पंक्तियों वाले इन संग्रह में मानव मनोवृत्ति, नारी-स्वभाव, मित्र का आदर्श रुप तथा आधुनिक युग की लोकवादी दृष्टि का संस्पर्श भी मिलता है।

'तुमने कहा था' :-

नागार्जुन के कविता का द्वितिय चरण में यह काव्यसंग्रह है। इस रचनाओं का टोन राजनीतिक अधिक है। इस संग्रह में व्यक्तियों पर केंद्रित कविताएँ कही अधिक मार्मिक है। यहाँ प्रकृति केंद्रित और कुछ संगीतमय कविताएँ भी है। नागार्जुन की प्रखर सामाजिक चेतना हवा में गंध की तरह इस संग्रह में व्याप्त है। मानव जीवन के विविध भाव-रुपमय चित्र इस संकलन में भी अपनी चिरपरिचित मुद्रा में उपलब्ध है। इन कविताओं का देश और काल नेहरु युग के बाद का भारत है। इन कविता में डॉ.चंद्रसिंह के मतानुसार - ''1967 की संविद सरकारे और उसके ठिक दस साल बाद 1977 में अनेक दलों को मिलाकर बनी केंद्र सरकार काँग्रेस के पतन का संकेत है, तो सत्तालोभ मात्र का ध्रुवीकरण और देश जनता की उपेक्षा कर उस राजनीति के पतन का संकेत भी।''[19]

'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' :-

सन 1974 से सन 1978 तक के बीच लिखी नागार्जुन की कविताओं का यह एक हिस्सा है। आठवे दशक का यह काल भारतीय समाज और राजनीति का उथल-पुथल भरा काल है। आजादी के बाद देश का सबसे बडा आंदोलन, संपूर्ण क्रांति के नाम पर जयप्रकाश नारायण की अगुवाई में काँग्रेसी शासन के पतन का कारण बना। इस काल में नागरिक अधिकारों को खत्म किया गया, और

अभिव्यक्ति की आजादी पर पाबंदी लगाई गयी। फलत: इस युग में पक्ष और विपक्ष की राजनीति ने श्रीमती इंदिरा गांधी और जयप्रकाश के आधारों पर एक नया चरित्र विकसित किया। नागार्जुन के इस संग्रह की कविताएँ इसी काल की चेतना का दस्तावेज है। इस कविताओं में राजनीतिक दलोंपर व्यंग्य किया है और आपातकाल, क्रांति, जेल के जीवन को अनुभव आदि का वर्णन आया है।

'हजार-हजार बाँहोवाली' :-

1936 से लेकर 1980 तक की कविताओं का एक बडा संग्रह यह है। यह ऐसा संग्रह है जिसमें उनके रचनाकार व्यक्तित्व की अधिकांश रेखाएँ मिल जाती है। नागार्जुन ने इस संग्रह में स्वाधिनता पूर्व भारतीय स्थिति को देखकर तत्कालीन स्थिति का वर्णन किया है। साथमें आत्मपरक कविताएँ भी नागार्जुन ने लिखी है। नागार्जुन के इन कविताओं में साम्राज्यवाद के साथ धनपतियों की लीला की आलोचना की है।

'पुरानी जुतियों का कोरस :-

नागार्जुन की कविताओं का यह एक ऐसा संग्रह है, जिसमें उनकी 1942 से 1981 तक की 72 कविताएँ संग्रहित है। इस संग्रह में कवि की सुदीर्घ काव्य-यात्रा के कई पडावों का संकेत तो मिलताही है, इसके साथ ही उसकी काव्य चेतना के विस्तार स्तरों का भी पता चलता है। इस प्रकार विश्व इतिहास का एक व्यापक कालखंड इन रचनाओं में मूर्त हो उठा है। नागार्जुन ने इसमें राष्ट्रीय चरित्र ही नहीं तो अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य का भी वर्णन किया है।

'रत्नगर्भ' :-

यह संकलन नागार्जुन की कविता के एक नये धरातल से हमारा परिचय कराता है। इस संग्रह की कुल आठ कविताओं की पृष्ठभूमि इतिहास, लोक प्रसिद्‌ध घटनाएँ और आख्यान है। अत: कवि यहाँ इतिहास और लोक की उन कडियों को जोडता है जो न केवल जीवन की पूर्नरचना करती है, बल्कि एक नये सत्य का भी साक्षात्कार कराती है। इतिहास के दिर्घ कालखंड की सामाजिक जीवन

व्यवस्था के अनेक त्रासदियों का चित्रण इनमें मिलता है। धार्मिक पृष्ठभूमि की कथा सरनियों के भीतर सामाजिक विषमता और विसंगति का कविने इसमें स्वच्छन्द उपयोग किया है।

'ऐसे भी हम क्या ऐसे भी तुम क्या' :-

नागार्जुन की यह कविता संवाद की कविता है। इसलिए यहाँ बातचीत की पद्धति काव्यात्मक हो गयी है। इस संग्रह में 1981 से 1983 तक की कविताएँ संग्रहीत है।

इस संकलन की कविताओं में प्रकृति सुषमा और समकालीन जीवन की विसंगतियों के बीच का वर्णन किया है। इसमें नागार्जुन ने शिशु जीवनपर अनेक कविताएँ लिखी है साथ ही साम्यवादी जीवन दर्शन को स्विकार कर समाज की विसंगतियों पर तिखा प्रहार किया है। काव्य व्यक्तित्व की सभी दिशाएँ इस रचना में मिल जाती है।

'आखिर ऐसा क्या कह दिया मैने' :-

नागार्जुन की 1981 से 1985 के बीच की लिखी कविताओं का संग्रह इसमें है। इसका प्रकाशन वर्ष 1986 है। इस संग्रह एक मात्र कविता 'मैला आँचल' 1973 की है। इसमें नागार्जुनने सर्वाधिक कविताएँ व्यक्तियों पर लिखी है। उनके चरित ज्ञात और अज्ञात दोनो प्रकार के है। परंतु सर्वत्र उनकी दृष्टि सामान्य की विशिष्ट चरित्रवालियों को खोजती है। प्रस्तुत संकलन में रेणुपर केंद्रित 'मैला आँचल' और बर्टोल्ड ब्रेख्त पर केंद्रित 'इन घुच्ची आँखों में' नागार्जुन की व्यक्तित्व-केंद्रित कविताएँ है।

'भूमिजा' :-

नागार्जुन की रचना-भूमि लोकजीवन का व्यापक क्षेत्र है। यह लोकजीवन न मात्र समकालीन और न ही देशकाल सीमित। नागार्जुन की ऋषि परंपरा इस लोकजीवन को अभिजात और राजतंत्रीय ढाँचे के भीतर भी खोज लेती है। 'भूमिजा' के रचना के मूल में लोकजीवन के साथ भारतीय नारी की जीवनगाथा कही अधिक प्रेरक है। नागार्जुन ने रामकथा के भीतर से नारी जीवन की त्रासदी और नारी सुलभ संवेदनाओं को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। 'भूमिजा' लघुकाव्य है। इसमें एक से

अधिक कथाएँ है। इसीलिए 'भूमिजा' को 'कथाकाव्य' भी कहा जा सकता है। नागार्जुन ने इसमें कथा के चयन में एक ही स्त्रोत का सहारा लिया है वह है रामायण। "भूमिजा का काव्यसौंदर्य उसका लोकजीवन और प्रकृति है नागार्जुन ने कथा विधान के अंतर्गत प्रकृति की बहुविध उपस्थिति दिखाई है।"[20]

नागार्जुन के काव्य संग्रहों में मैथिल काव्य, संस्कृत की कविताएँ सिंहली लिपि में प्रकाशित संस्कृत भाषा का लघुकाव्य मिलता है। संग्रहों में आई हुओ कविताएँ -

युगधारा

सतरंगे पंखोवाली

इस गुब्बारे की छाया में

आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने

ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !

रत्नगर्भ

पुरानी जूतियों का कोरस

हजार-हजार बाँहों वाली

खिचडी विप्लव देखा हमने

प्यासी पथराई आँखें

चंदना

तुमने कहा था

शपथ

प्रेत का बयान

खून और शोले

चना जोर गरम

अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन

तालाब की मछलियाँ (चुनी हुई कविताएँ)

पत्रहीन नग्न 'गाध' (मैथिली काव्य)

भस्मांकुर (खंडकाव्य)

मेघदूत (अनुवाद)

विद्यापति के गीत (अनुवाद)

जयदेव का गीत गोविन्द

निराला : एक व्यक्ति : एक युग (आलोचना)

प्रेमचंद (आलोचना)

धर्मलोकशतकम (सिंहली लिपि में प्रकाशित संस्कृत भाषा का लघुकाव्य)

देश शतकम् (संस्कृत में कविताएँ)

कृषक दशकम् (संस्कृत में कविताएँ)

श्रमिक दशकम् (संस्कृत में कविताएँ)

अयोध्या का राजा (बाल साहित्य)

कथा मंजरी (बाल साहित्य)

रामायण की कथा (बाल साहित्य)

वीर विक्रम (बाल साहित्य)

सयानी कोयल (बाल साहित्य) आदि।

इसी तरह नागार्जुन के काव्य संग्रह में कविताओं की विविधता मिलती है। साथ ही इन कविताओं में राजनीतिक, सामाजिक, प्राकृतिक, व्यंग्यपरक आदि का यथार्थ चित्रण मिलता है।

निष्कर्ष :-

नागार्जुन की कविता दिक् और काल सापेक्ष कविता है। उनकी काव्य मानवी जीवन और सृष्टि के विविध भाव-व्यापारों से जुडकर अपने जीवन जगत का विस्तार करता है। गाँव से लेकर

महानगर तक, हिमालय से लेकर समुद्र तक और जहाँ कही भी जीवन तत्त्व फैला है नागार्जुन की कविता वहाँ तक पहुँचती है। उनके कविता का रागात्मक संवेदना का राजनीतिक पक्ष भले ही अधिक प्रबल हो दुसरे पक्ष उससे कमजोर नहीं है।

नागार्जुन की कविताओं में विविधता का कारण उसका अंतर प्रांतिय चरित्र है। वह कविताओं इतने कास्तेज़ी से अतिक्रमण और परिवर्तन करते है कि कई बार तो एक ही कविता में मैदानी जीवन से पहाड के जीवन में पहुँच जाते है। नागार्जुन की कविता की विविधता एकरसता के विपरित उपजी है। मनुष्य के नाना भावों और ज्ञान तथा क्रिया व्यापारों की पूर्णता नागार्जुन की कविता में मिली है। नागार्जुन के काव्य विविधता का एक पक्ष राजनीतिक है तो दुसरा पक्ष लोकजीवन और संस्कार है।

नागार्जुन की कविताओं में लोकचेतना का एक स्वरुप निर्धारित होता है तो दुसरा स्वरुप त्यौहारों, उत्सवों और जीवन-संस्कारों से भी। उनकी कविताओं में वर्ग संघर्ष का भी चित्रण मिलता है। नागार्जुन की कविता में जनसामान्य की उपस्थिति एक मुक्कमल बनावट के साथ एक पक्षधरता लिए है। नागार्जुन की कविता में पाब्लो पिकासो की पेंटिंग की तरह मानवीय संबंध और मनुष्य मन की विविध प्रतिच्छवियाँ सौंदर्य को मूर्त करती है।

कहानी :-

नागार्जुन की कहानियों में 'असमर्थदाता', 'ताप हारिणी', 'विशाखा-मृगारमाता', 'ममता', 'असमान के चंदा तेरे' , 'भूख मर गई थी' उपलब्ध है।

उनकी सबसे पहली कहानी 1935 में छपी थी। नागार्जुन की कहानियों में सहजता और स्वाभाविकता है। नागार्जुन की 'ताप हरिणी' कहानी गंगा में स्नान करनेवाली युवतियों की ओर, वहाँ उपस्थित पुरुषों की दृष्टि कैसी आडी-तिरछी लकीरे बनाती है। इसका चित्र लेखक ने सहज खिंचा है। 'विशाखा मृगारमाता' धनसंपदा और वैभवपूर्ण नगर सेठ और राजा के समझौतावादी संबेधों पर टिका कहानी है। जिसकी मुख्य पात्र विशाखा के वैभवपूर्ण जीवन की गाथा का यथार्थ रुप चित्रित है।

'ममता' मातृविहीन बालक 'बुलो' कहानी का मुख्य पात्र है और उसकी चाची मुख्य स्त्री पात्र ममतामयी नारी का पवित्र हृदय आवेश में आकर बुलो को दो चपता लगा देता है लेकिन अपनी इस गलती पर वह पछताती है। और फिर उस पर पहले से भी अधिक ममता लुटाती है। लेखक ने यहाँ दो विरोधी स्वभावों को प्रस्तुत कर नारी मन की ममता का पक्ष उँचा उठाया है। 'आसमान में चंदा तेरे' कहानी में एक साहित्यकार की आर्थिक, सामाजिक तथा पारिवारिक स्थितियों का यथार्थ वर्णन है। वर्तमान समाज में साहित्यकार के प्रति न तो पहले जैसी भावना रही है और नही श्रद्धा। उस पर यदी साहित्यकार मात्र कवि है तब तो उसे कोई महत्त्व ही नहीं देता। मनोरंजन के नामपर नवोदित कवियों की मंडली से सस्ते में काम निकालने के लिए कवि-सम्मेलनों का आयोजन प्रतिष्ठित आयोजक करते रहते है। इसी माध्यम से लेखक ने विरोध संघो, परिषदों और सम्मेलनों का भी खाका खींच दिया है। 'भूख मर गई थी' कहानी आम गरीब जनता की है जो विपदाओं के अनेक थपेडे सहती है, और अगर ये थपेडे वृद्धावस्था में सहने पडे तो स्थिति और कारुणिक हो उठती है। इसी तरह कहानी की कथा है। यह वर्णन प्रधान कहानी है। मुख्य चरित्र वृद्ध व्यक्ति है। इसी तरह और चरित्रों का वर्णन करने में नागार्जुन सफल हुअे है।

नागार्जुन ने अपनी कहानियों में मध्यमवर्गीय जीवन का चित्रण किया है। उनकी कहानियों में व्यक्ति की पीड़ा और आक्रोश उमड-उमड पडता है। उनकी कहानियों में विविधता मिलती है और विविधता में वास्तविकता का वर्णन मिलता है। उनकी कहानियों में संपूर्ण नागार्जुन के दर्शन होते है।

यात्रा प्रसंग :-

नागार्जुन के यात्राप्रसंगो में - 1) हिमालय की बेटियाँ, 2)टिहरी से नेलड्, 3) थो लिड् महाविरम, 4) अतिथ्य सत्कार, 5) सिंध में, सत्रह महीने आदि है। ''रुसी कवी नागार्जुन 'यात्री' के लिखे हुए ये यात्रा-प्रसंग मात्र यात्रा प्रसंग ही नहीं बल्कि जीती-जागती यात्राओं के दस्तावेज है, जो सदैव जीवंत, सजीव तथा रोमांचक बने रहेंगे।''[21] नागार्जुन का यात्रा प्रसंगों का विवरण अपने आप में यात्राओं के बोलते प्रसंग है। यह जीते जागते प्रसंग हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। इसमें लेखक

की लेखनशैली, भाषात्मक प्रवाह, संवेदनात्मक मृदुल गुंफन, चित्रात्मक कला और इन सबसे उपर मानव-मन के हृदय में एक ही स्पंदन का सूत्र झंकृत करनेवाली आत्मीयता है। नागार्जुन छोटे-छोटे संवेदन, अनुभव, चित्र आदि का वर्णन करते है। वर्णन शैली, कलात्मकता, चित्रांकन शैली आदि उनकी यात्रा वर्णनों में उद्‌धरण मिलते है। उनके यात्रा वर्णननोमें उपजाऊ खेत, जंगल, सीधे-सादे लोग, उनका पेहराव, उनकी जीविका आदि का वर्णन मिलता है।

नागार्जुन के यात्रा प्रसंगों में छोटे-छोटे संपूर्ण वाक्य, संपूर्ण चित्रण के साथ अति आकर्षक तथा रोमांचक बन पड़े है। कथोपकथन शैली के संक्षिप्त प्रयोगों में विस्तृत प्रसंग समा गये हैं। कहीं-कहीं यात्रा प्रसंगों की भाषा अति साहित्यिक तथा चमत्कारी भी हो गई है। पात्रों का यथार्थ रेखांकन करने में नागार्जुन खरे उतरे है। छोटे वाक्यों में भी अर्थगांभीर्ययुक्त चित्र अनोखा माधुर्य देते हैं। नागार्जुन के यात्रा-प्रसंग देश विशेष और स्थान विशेष का प्राकृतिक, भौगोलिक वर्णन ही नहीं वरन् पात्रों के रुप वर्णन तथा व्यवहार तक को चित्रित करना नहीं भूलते हैं। यात्रा अनुभवों के साथ आंतरिक अनुभूतियों का संगम भी अनूठा बना है।

संस्मरण :-

नागार्जुन के उपलब्ध संस्मरण है, 'मैं सो रहा हूँ', 'एक घंटा', 'आईने के सामने' यह तीन संस्मरण है। 'मैं सो रहा हूँ' संस्मरण बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ बिताए दिनों की याद है। वे अपनी धुन के पक्के थे। दिन को दो, तीन घंटा सोना जरुरी मानते थे और सोने से पहले दरवाजे के बाहर तख्ती टाँग देते थे। लेखक ने इस संस्मरण में दिन में सोने पर अपने विचार भी दिये है।

'एक घंटा' निरालासंबंधी संस्मरण है। विषय है गोमतीपर बाँध बँधना चाहिए, कैसे और कब? इस बारे में निराला कुछ नहीं कहते केवल यही दोहराते है "गोमती पर बाँध कौन बाँधेगा।" नागार्जुन उन्हें विक्षिप्त नहीं मानते। इस संस्मरण में तारीख, वर्ष तथा समय भी दिया गया है। 3 जनवरी 53 शाम का वक्त । छ बज रहे थे। आरंभ में तथा अंत में 'घडी ने सात बजा दिए।'

तिसरा संस्मरण 'आईने के सामने' में राकेश मोहन का संस्मरण है। नागार्जुन ने प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन सहजता से कर दिया है, बीच-बीच में आत्मकथात्मक कथ्य भी है। भाषा वही स्वाभाविक संवाद शैली। 'आईने के सामने' जैसे संपूर्ण प्रतिकृति साकार हो उठती है वैसी ही नागार्जुन अपने जीवन का साकार रुप पूरी कुशलता से देते चले गये है। आत्मकथात्मक शैली का यह संस्मरणात्मक रुप साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

साक्षात्कार :-

नागार्जुन का साक्षात्कार का शीर्षक है 'प्रश्नों के सलीब पर' जिसमें लेखकों की प्रखरता के बारे में पूछने पर लेखक ने अपनी बाल्यावस्था के विभिन्न रुप स्पष्ट करते हुअे अपनी प्रगतिशीलता के तीव्र रुप का आधार बतलाया है। युवा लेखन, व्यवसायीक संपादन तथा साहित्यकारिता तथा कला सम्मेलनों के उद्देश्यों के बारे में नागार्जुन के विचार संकलित है।

भाषण :-

'चिठ्ठी-पत्री' में 'श्री खुशीराम शर्मा वसिष्ठ के नाम', 'श्री कुलमणि देवकोटा के नाम', 'डॉ. रामविलास शर्मा के नाम', 'डॉ. विजयबहादुरसिंह के नाम', 'डॉ. किशोर नवल के नाम', 'डॉ. मैनेजर पांडये के नाम', 'नरेंद्र कोहली के नाम', 'श्री शेखर पाठक के नाम' (काव्यात्मक पत्र), 'श्री.वाचस्पति के नाम', 'श्री.शकुंतला वाचस्पति के नाम', 'डॉ. सुरेश शर्मा के नाम', 'डॉ.ज्ञानश हरित के नाम', 'श्रीमती शिरोमणि देवी के नाम', 'सुश्री आरती शुक्ल के नाम' तथा 'श्री श्यामकांत मिश्र के नाम' पत्र है। इन पत्रों में अपना ही सौंदर्य है। लेखक सर्वत्र उपस्थित ही नहीं, प्रत्यक्ष बोल रहा है। ममत्व संस्पर्श तथा स्नेह बाँट रहा है ऐसा लगता है।

निबंध :-

नागार्जुन ने गद्य साहित्य में निबंध भी लिखे। विचार की सहदयता और भाषा की सरलता, शैली की तरलता के साथ मिलकर नागार्जुन ने निबंध लिखे है। उनका पहला निबंध 'बम्भोलेनाथ' है। इसमें बैल की सजावट का रुप उनकी चित्रात्मक शैली की क्षमता को उजागर करने

में समर्थ है। उनका दुसरा निबंध 'सरस्वती का अपमान' है। इसमें जनता की आवाज बुलंद है। इसमें कविवरों के साहित्यिक भाषा में लिपटे गीत और बोल जनसमाज, श्रोता, को इतना मुग्ध नहीं करपाते जितना एक नवयुवक द्‌वारा गाया गया लोकगीत। उनकी भाषा में सरस्वती का सच्चा सम्मान है। अंत में लेखक ने अपनी जनवादी भाषा में जनवादी चेतना का रुप व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त उनके प्रकाशित निबंध है, 'अन्नीहनम क्रियाहीनम्', 'दादाजी आप रिटायर हो', 'रहनुमा', 'ब्राह्मण बुद्‌ध युग में', 'राजाश्रय और साहित्यजीवीका', 'हिंदी की छाती पर', 'अंग्रेजी को नहीं लादा जा सकता', 'मैथिली और हिंदी', 'मानस चतु:शब्दी समारोह', 'मेघकाव्य : नया परिपेक्ष्य', 'मुक्तवृत्त' आदि।

नागार्जुन ने छोटे-छोटे निबंधों में अपनी प्रतिभा तथा प्रगतिशील चेतना की छाप छोडी है। उनके निबंधों में कहानी से शैली संयुक्त लगती है। ''लेखक की प्रबुद्‌धता समसामायिक प्रसंगों का लेखा-जोखा तथा नई पीढी के प्रति नई आशाएँ उनकी अपार समर्थता की द्योतक है।''[22] नागार्जुन ने निबंधों के बीच में कविता के सुरों और शैली का प्रयोग कविरुप को प्रतिष्ठित करने वाले है। 'एक व्यक्ति : एक युग निराला', 'जिने की पहली शर्त', 'श्रमनिष्ठा', 'कलम के मजदूर की', 'राहुल जी - उनका साहित्य और व्यक्तित्व', 'राहुल सांकृत्यायन', 'प्रेमचंद', 'फणीश्वरनाथ रेणू', 'यशपाल' यह व्यक्तिपरक निबंध है। इसमें समीक्षक रुप केवल विचारों की श्रृंखला में उलझकर तटस्थ नहीं रही है वरन् साहित्यकारों की जीवन-रस स्रोत है। साहित्यिक गतिविधियों के साथ साहित्यकारों के जीवन की अथक साहित्य सेवा की भी विस्तृत चर्चा की है।

व्यंग बाबा के साहित्य की बहुत बडी शक्ति है। कबीर की तरह उनके यहाँ व्यंग्य जन्मजात संस्कार के रुप में है। सामाजिक असमानता, धार्मिक रुढियाँ, फैशन परस्ती, राजनीतिक भ्रष्टाचार, ये सबकुछ बाबा की व्यंग्य की नोक पर आए है। नागार्जुन ने किसी को माफ नहीं किया। उनके व्यंग्य का लक्ष्य व्यक्ति विशेष न होकर तत्कालीन स्थितियाँ है। उनके व्यंग्य में कई स्तर है, कई तेवर हैं। ''कहीं उनमें उपहाव-वृत्ती प्रमुखता पाती है, कहीं प्रहारात्मक तेवर प्रबल हो जाता है तो कहीं फटकार नजर आती है, साथ ही करुणा का स्वर भी है।''[23]

बाबा की भाषा अनोखी, अपने ढंग की है। एक-एक शब्द को दुधारु गाय माननेवाले बाबा भाषा और रुप-विधान के प्रति तटस्थता दिखाते हैं। न भाषा को माँजते है, न रुप को सँवारते है। उनकी सहज और सरल भाषा संस्कृत, देशज, उर्दू, अंग्रेजी आदि सभी भाषाओं के शब्द तथा आंचलिक लोकोक्तियों, मुहावरों, और उपक्रमों के सौंदर्य को ग्रहण करती जनभाषा का, लोकभाषा का सृजनात्मक चरित्र उपस्थित करती है। जहाँ कभी व्याकरण की सीमाएँ भी टूटती है तो कभी गद्य और पद्य का भेद भी मिट जाता है।

आधुनिक हिंदी में श्रेष्ठ व्यंग की परंपरा स्थापित करनेवाले जनसाधारण के सच्चे हितैषी बाबा का साहित्य हिंदी जगत की अमूल्य धरोहर है।

पुरस्कार :-

1) साहित्य अकादमी।

2) मैथिलीशरण गुप्त सम्मान

3) भारत भारती

निष्कर्ष :-

नागार्जुनजी का जन्म, बचपन अभावग्रस्तता में बिता है। उन्होंने अपनी शिक्षा अधिकांश जीवन की विस्तृत पाठशाला में संपन्न की है। उन्होंने शिक्षा के बाद अपनी कलम चलाई और वैद्यनाथ मिश्र से 'नागार्जुन' बन गये। उन्होंने अपने साहित्य में जीवन की वास्तविकता का यथार्थ रुप में वर्णन किया है। उन्होंने उपन्यास, काव्य, कहानी, निबंध, संस्मरण, यात्रावर्णन, आदि लिखा है। उन्होंने उपन्यास और काव्य का लेखन अधिक किया है। उनके उपन्यासो में भारतीय जनजीवन का चित्रण मिलता है और भारतीय ग्रामजीवन की समस्या का वर्णन भी मिलता है। उनका उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' पहला आँचलिक उपन्यास है। इसमें विधवा स्त्री की करुण गाथा का चित्रण किया है। 'बलचनमा' उनका आँचलिक उपन्यास है इसमें जमीनदारी प्रथा और मजदूरों पर होने वाले अन्याय का चित्रण किया है। 'नई पौध' में अनमेल ब्याह और नई चेतना का वर्णन मिलता है। 'बाबा बटेसरनाथ' में एक

वटवृक्षद्वारा जमीनदारी प्रथा और अंग्रेजों के शोषण नीति की कहानी कहीं गयी है। 'दु:खमोचन' में ग्रामसुधार एवं ग्राम विकास का चित्रण मिलता है। 'वरुण के बेटे' में मछुआ परिवारों की सुख-दुख, और वर्ग संघर्ष की कहानी है। 'कुंभीपाक' यह एक नागरी आँचलिक उपन्यास है। इसमें एक नारी की कहानी है। 'हिरक जयंती' एक व्यंग्यप्रधान कृति है, इसमें वर्तमान राजनीतिक तथा नेतागिरी पर करारा व्यंग्य किया है। 'उग्रतारा' यह उपन्यास बंदीगृह की पार्श्वभूमि पर आधारित है। 'अभिनन्दन' में भारतीय राजनीतिक स्थिति का खोखला और यथार्थ वर्णन किया है। नागार्जुन ने 'पारो' में अनमेल विवाह के परिणामों की चर्चा की है साथ ही विवाह की गलत परंपराओं की आलोचना की है। इसी तरह नागार्जुन ने उपन्यासों में जमीनदारी प्रथा, जमीनदारोद्वारा शोषण, नारी शोषण, अंधश्रद्धा, रुढी परंपरा, अंग्रेजों का शोषण आदि का यथार्थरुप में चित्रण किया है। उन्होंने अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। नागार्जुन समाजवादी, यथार्थवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक होने के कारण शोषित समाज की पीडा और वर्ग-संघर्ष उनके उपन्यासों में पुरे आवेग के साथ उभरकर आया है।

नागार्जुन के कविता का संसार यथार्थ को एक अंत: संग्रायित संसार है। उनकी रचनाओं में कविता और जीवन यथार्थता के साथ जुडे है। उनकी कविताएँ मानव-जीवन और सृषिट पर लिखी है। उनकी कविताओं में विविधता मिलती है। और विविधता में यथार्थ चित्रण मिलता है। उनकी कविता लोकचेतना के स्वर गाँव से नगर तक, प्रकृति से कारखाने तक समान रुप से जुडे हुए है। 'युगधारा', 'सतरंगे पंखोवाली', 'प्यासी पथराई आँखे', 'भस्मांकुर' आदि काव्य संग्रहों में व्यक्तिवाद, यथार्थवादी चेतना, राजनीतिक चित्रण, प्रकृति चित्रण, नारी चित्रण, पौराणिक चित्रण आदि का वर्णन मिलता है। सरलता और प्रवाहमयता संघनता और सांद्रता नागार्जुन की कविता में सुविचारित रुप से आयी है। नागार्जुन का काव्य हर्ष, प्रेम, वात्सल्य, क्रोध, आदि भावों को बिंबरुप बनाते है। इसी तरह उनके काव्य में चरित्रों की बिंब रचना सहज ही उपलब्ध हुआी है। इस बिंब निर्माण की कला में नागार्जुन अपने काव्यों में सृष्टि को भी मूर्त और जीवंत बनाते है।

सचमुच ही नागार्जुन के काव्य में प्रगतिशील चेतना के वाहक, जनचेतना, पक्ष स्वर, व्यक्तियों के प्रति करुणाशील, उदार मानवतावाद के पोषक, प्रेम के व्याख्यात, प्रखर व्यंग्यकार, जीवन के प्रति आस्थावान, मानवता के प्रतिष्ठापक और आशिव के ध्वंस पर शिव का निर्माण करने वाले कवि है ऐसा लगता है।

कविता की जरुरत यदि मनुष्य समाज के लिए अपरिहार्य है तो हिंदी साहित्य के लिए नागार्जुन की कविता अपरिहार्य है। ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा। मनुष्य की संघर्षचेतना तथा सौंदर्य-चेतना को यदि किसी एक ही भारतीय कवि में खोजना चाहे तो वह कवि है 'नागार्जुन'।

नागार्जुन ने अपने साहित्य संसार में उपन्यास काव्य के अलावा कहानियाँ भी लिखी है। उनकी कहानियाँ मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी कहानियाँ 'असमर्थदाता', 'ममता', 'ताप हारिणी', 'विशाखा-मृगारमाता', 'आसमान के चंदा तेरे', 'भूख मर गई थी' आदि में जीवन की वास्तविकता का वर्णन मिलता है। इसमें सहजता, स्वाभाविकता मिलती है।

नागार्जुन ने उपन्यास, काव्य, कहानी के अलावा निबंध साहित्य भी लिखा। जिसकी अपनी पहचान है। उनकी 'बम्भोलेनाथ' और 'सरस्वती का अपमान' निबंध व्यंग्य की पैनी मार और विचाराभिव्यक्ति में लिखे गये है। इसमें शैली तरलता, भाषा की सरलता और सहृदयता मिलती है। उन्होंने साहित्यकारों की समस्याओं, मानसम्मानों तथा यशपाल, निराला, राहुल सांस्कृत्यायन, फणिश्वरनाथ रेणू, प्रेमचंद आदि पर निबंध लिखे है।

नागार्जुन की यात्रा-प्रसंगों में जीति-जागती यात्राओं के सजीव रोमांचक चित्रण मिलते है। उनकी 'हिमालय की बिटियाँ', 'आतिथ्यसत्कार', 'सिंध में सत्रह महीने' आदि यात्रा प्रसंगों में यथार्थ आकर्षक तथा रोमांचक वर्णन मिलता है इसके जीते-जागते बोलते प्रसंग हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। लेखक की शैली, भाषात्मक प्रवाह, संवेदनात्मक, मृदुल गुंफन, चित्रात्मक कला आदि का सुरेख संगम मिलता है।

नागार्जुन ने अपने हिंदी साहित्य संसार में संस्करण भी लिखे है। उनका पहला संस्मरण बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ बिताये दिनों की याद है वह है 'मैं सो रहा हूँ' लेखक ने इसमें दिन में सोने पर अपने विचार, प्रकट किये है। 'एक घंटा' निराला संबंधित संस्मरण है तो 'आईने के सामने', मोहन राकेश का संस्मरण है इसके बीच-बीच में आत्मकथनात्मक कथ्य भी आया है। इन संस्मरणों की भाषा स्वाभाविक बनी है। और इसकी शैली संवाद शैली है। उन्होंने इस में जीवन का साकार रुप पूरी कुशलता से दिया है। नागार्जुन ने 'साक्षात्कार', 'भाषण', 'चिठ्ठी-पत्री' आदि का भी लेखन किया है।

नागार्जुन के समग्र साहित्य पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि उनका साहित्य जीवन और जगत की वास्तविकता का एक विशिष्ट प्रतिफलन है। उनका साहित्य वास्तविक संसार का आलोचना और प्रतिबिंब भी है। यथार्थ का दर्पण, प्रगति की मशाल, सामाजिक प्रभाव और परिवर्तन का हथियार जिसकी शक्ति और प्रहार संजीवनी का काम करती है। उनके साहित्य में कलात्मकता मणिकांचन संयोग के साथ है। उनके साहित्य में विविध आयाम ऐसे स्तंभ है जिनका सम्मिलित प्रकाश एक अजर, अमर, ज्योति पुंज के रुप में मार्गदर्शन करता रहेगा। नागार्जुन के बारे में ऐसा कहना उचित होगा की हिंदी साहित्य में नागार्जुन का स्थान अद्वितिय है, उनका साहित्य हिंदी जगत की अमूल्य धरोहर है।

---xxx---

संदर्भ सूची

1. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ.1.
2. वही, पृ.1.
3. वही, पृ.1.
4. डॉ. प्रकाशचंद्र भट्ट - 'नागार्जुन जीवन और साहित्य', पृ.38.
5. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ.14.
6. डॉ.ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', पृ.47.
7. वही, पृ.47.
8. वही, पृ. 50.
9. वही, पृ. 48.
10. वही, पृ. 51.
11. नागार्जुन, 'बलचनमा', पृ. 78.
12. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', पृ. 56.
13. वही, पृ. 58.
14. प्रा. अर्जुन जानू घरत - 'कथाकार नागार्जुन एवं बाबा बटेसरनाथ', पृ. 30.
15. 12 फरवरी 1978 को दिल्ली में शोधार्थी के साथ नागार्जुन से हुई बातचीत।
16. डॉ. चंद्रहास सिंह - 'नागार्जुन का काव्य', पृ.30.
17. शेरजंग गर्ग - 'स्वातंत्र्योत्तर कविता का वस्तुगत प्रतिपेक्ष्य', पृ.30.
18. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', पृ. 43.
19. डॉ. चंद्रहास सिंह - 'नागार्जुन का काव्य', पृ.43.
20. वही, पृ.95
21. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', पृ. 65.
22. वही, पृ. 63.